सूरदास के काव्य में गीति-तत्व

(प्रथम वर्ष, हिंदी प्रतिष्ठा)

सूरदास के काव्य में गीति-तत्व प्रमुखता से उपलब्ध है। सफल गीति काव्य के लिए प्रमुख रूप से चार तत्व आवश्यक माने जाते हैं।

1.आत्मप्रकाशन

2.भावों की गहनता

3.संक्षिप्ति

4.संगीतात्मकता

सूर के काव्य में गीति तत्व जयदेव, विद्यापति और कबीर से होता हुआ आया है। सुर की रचनाओं में 'सूरसागर' प्रमुख है। वही उनका प्रतिनिधि ग्रंथ है। इसमें भक्ति, वात्सल्य और श्रृंगार की त्रिवेणी पूरी चंचलता के साथ किल्लोल कर रही है।

डॉ. सुरेशचंद्र गुप्त के अनुसार

"सूरसागर तो रस का सागर है"

इनके गीतों का मुख्य विषय व आलम्बन भगवान श्री कृष्ण हैं। सूरदास पुष्टिमार्ग के भक्त कवि थे, इसलिए इनके गीतों में पुष्टिमार्ग की प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रधानता है। कृष्ण की भक्ति और आराधना सूर अत्यंत अनन्य भाव से करते हैं। जब वात्सल्य का प्रसंग आता है तो सूर की बाल-लीला वर्णन अत्यंत मनोहारी है। सूर ने कृष्ण की बाल-सुलभ चेष्टाओं रूठने, चलने, शैतानी करने, झूठी शिकायत करने आदि का सूक्ष्म व हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। श्रृंगार के प्रसंग में सूर ने श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। यद्यपि संयोग की अपेक्षा वियोग में सूरदास का काव्य-कौशल अधिक निखरकर सामने आया है। संयोग श्रृंगार भी अत्यंत सरस व मार्मिक वर्णन से ओतप्रोत है। परन्तु गोपियों का विरह वर्णन इतना सजीव बन पड़ा है कि पाठक के नेत्र अनायास ही सजल हो उठते हैं। गोपियों की आंखें कृष्ण-वियोग में निरंतर इतनी बरसती हैं कि इनसे होड़ में घन भी हार जाते हैं-

"सखी, इन नैनन तें घन हारे

बिनु ही रितु बरसत निसि-बासर, सदा सजल दोऊ तारे

उरध स्वास, समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुमडारे

बदन-सदन में बसे बचन-खग, रितु पावस के मारे

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार,

“जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष-धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील-कुंजों के बीच मुरझाए मन को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने लगीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार कवि सूरदास की वीणा की थी।“

सूरदास ने अपनी कृति ‘सूरसागर’ में पदों के साथ संबंधित रागों का संयोजन जिस प्रौढ़ता और प्रचुरता से किया है, उसे देखकर तो अच्छे-अच्छे संगीतकार भी स्वयं को परास्त अनुभव करने लगते हैं, जबकि सूरदास ने शास्त्रीय संगीत का कोई विधिवत प्रशिक्षण नहीं लिया था। आत्मप्रकाशन, संगीतात्मकता, भावनात्मक चरमोत्कर्ष और सहज प्रवाहशीलता सुर के गीतों की प्रधान विशेषताएं हैं। जैसे-

“बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै

तब ये लता लगत अति शीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै

वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलै अलि गुंजै

पवन पानि घनसार संजीवनि, दधिसुत किरनभानु भई भुंजै

ए उधो, कहियो माधव सों, विरह-करद करि मारत लुंजै

सूरदास प्रभु को मग जोवत, अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजै”

गीतिकाव्यों के रचयिताओं की श्रेणी में सूरदास का स्थान निर्धारित करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है, क्योंकि सूर के गीत अपनी विलक्षणता के कारण सर्वोपरि ठहरते हैं। यह मार्मिकता और मिठास मात्र उन पदों में ही नहीं है कि जिनमें गोपियों के संयोग या वियोग का वर्णन है, अपितु उन पदों में भी है जिनमें श्री कृष्ण उद्धव के समक्ष ब्रज से संबंधित अपनी स्मृतियों के अविस्मरणीय होने की बात करते हैं। यथा-

उधो! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं

हंससुता की सुंदर नगरी, अरु कुंजन की छाहीं

वे सुरभी, वे बच्छ दोहिनी, खरिक दुहावन जाहीं

ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि-गहि बांही

यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुगताहल जाहीं

अबहि सुरति आवत वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं

अनगन भांति करी बहुलीला, जसुदा-नंद निबाहीं

‘सूरदास’ प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं”

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सूरदास के काव्य में गीति-तत्व प्रबल है।

डॉ. बिभा कुमारी

विश्वेश्वर सिंह जनता कॉलेज, राजनगर